Knowledge Consortium of Gujarat
Department of Higher Education - Government of Gujarat
Journal of Multi-Disciplinary - ISSN : 2279-0268

Continuous Issue - 23 | March – April 2018

गांधी विचार के अर्थशास्त्र की वर्तमान प्रसंगिकताः आचार्य जे. बी. कृपालानी की नजर से

सारांश

आचार्य कृपालानीजी को गांधीजी के विचारों में असीम श्रद्धा थी किन्तु वह अंधविश्वासी न होकर तर्क पर आधारित थी। उन्होंने अपनी पुस्तक **"गांधीः हिज लाइफ एण्ड थोट"** के एक प्रकरण **गांधीजी के आर्थिक विचार** में इसका तटस्थ निरूपण किया है। फिर भी उनकी दृष्टि से गांधीजी के आर्थिक विचारों के प्रति कृपालानीजी की सोच का साक्षात्कार करने एवं उसे विस्तार व गहनता से समझने हेतु इस पुस्तक के एक अन्य प्रकरण- **वाज गांधी मोडर्न?** को इस लेख के आकार देने तथा विषयवस्तु के साथ न्याय करने हेतु शामिल किया गया है। प्रस्तुत लेख तीन भागों में विभक्त है। प्रथम भाग भूमिका है जिसमें गांधीविचार का वह परिप्रेक्ष्य दर्शाने का प्रयास किया गया है जो गांधीजी के आर्थिक विचारों की प्रासंगिकता को दर्शाता हैं, दूसरे भाग में इसी कड़ी की पूरकता प्रदान करने वाले अहिंसात्मक अर्थशास्त्र के प्रमुख बिन्दुओं को उजागर किया गया है तथा तीसरे अंतिम भाग उपसंहारः आचार्य कृपालानी और गांधी में उनके उस स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जो दो सख्शियत पर मंजिल एक की अनुभूति कराता है एवं गांधीजी के आर्थिक विचारों की वर्तमान प्रासंगिकता को परिलक्षित करता है।

कृपालानीजी और गांधीजी.......

कृपालानीजी चम्पारण सत्याग्रह के दौरान गांधीजी के सम्पर्क में आए। उन्होंने 1920-1927 तक गूजरात विद्यापीठ अहमदाबाद के महादेव देयाई समाजसेवा महाविद्यालय में बतौर प्रधानाचार्य अपनी सेवाएं भी प्रदान कीं। कृपालानीजी गांधीजी के अर्थशास्त्र अथवा अर्थदर्शन को समग्रता व नीतिमत्ता के साथ जोड़कर देखते हैं। यह अर्थशास्त्र नफा नुकसान का अर्थशास्त्र नहीं है अपितु लोक कल्याण का अर्थशास्त्र है जिसकी जड़े विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था के साथ जुड़ी हुई हैं, जिसका संबंध महज सकल उत्पादकता वृद्धि अथवा आय वृद्धि से नहीं अपितु सभी लोगों के जीवन में गुणात्मक-मात्रात्मक सुधार लाने से है, लोगों की बुनियादी जरूरतों की संतुष्टि है, उपलब्ध भौतिक व प्राकृतिक संसाधनों के विवेकपूर्ण विदोहन से है, श्रमसाध्यता की प्रतिष्ठा से है, साधन शुद्धि के दृढ़ विचार से है, जीवन के हर क्षेत्र में महत्तम स्वावलंबन लाने से है, हर एक को रोजी-रोटी का अवसर मुहैया कराने से है, सभी लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि से है, सभी लोगों को काम के समान अवसर उपलब्ध कराने एवं शोषणमुक्त अर्थव्यवस्था स्थापित करके भेदभाव की सामाजिक कुरीति को दूर करने से है।

कृपालानी गांधीजी के प्रमुख अनुयायियों में से एक हैं जिन्होंने अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक राजनैतिक जीवन में उन आदर्शों की वकालत की जो मानवीयता के लिए आवश्यक माने जा सकते हैं। उन्होंने गांधीजी के जीवन से सीख लेकर ऐसे वातावरण को प्रश्रय दिया जिसमें आम आदमी के हितों का रक्षण होता है। वे गांधीजी के आर्थिक विचारों की समीक्षा करते हुए स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि समाज की समृद्धि इसमें नहीं है कि राष्ट्र की कुल आय में इजाफा हो अपितु खरी समृद्धि इसमें निहित है कि जिसके

द्वारा हरेक व्यक्ति की खरीद क्षमता में वृद्धि हो, वैयक्तिक एवं सामूहिक कार्यक्षमता व कार्यकुशलता में सुधार हो तथा लोग ऐसे साधनों के द्वारा आयोपार्जन \ अर्थोपार्जन करें जिससे समाज के अन्य वर्गों को अपेक्षित लाभ मिलता हो एवं कोई हानि न होती हो। एक स्वस्थ अर्थतंत्र में ऐसी ही प्रवृत्तियां वांछनीय मानी जा सकती है। अकादमिक पटल पर कृपालानीजी वह सख्शियत हैं जो गांधीजी के आर्थिक विचारों में सम्पोषित विकास की विभावना महसूस करते हैं, स्थायी समाज की रचना का साकार स्वप्न देखते हैं एवं उन्हें समाज की समस्याओं के स्थायी समाधान के लिए अनिवार्य मानते हैं। उन्होंने गांधीजी की इस सोच को पुरजोर के साथ उन्होंने अपनी पुस्तक में रखा, अपने जेहन में उतारा और कहा कि भारतीय परिवेश में पश्चिम के अर्थशास्त्रीय विचारों को ज्यों का त्यों नहीं अपनाया जा सकता। जड़ पदार्थों के विपरीत मानवीय स्वभाव व आदतों की विविधताएं हैं, संतुष्टि के स्तर के, संसाधनों के उपयोग के उनके अपने सामाजिक-सांस्कृतिक प्रतिमान हैं जिनका समावेश अर्थतंत्रीय विचारधारा में होना जरूरी है। किसी भी राष्ट्र के अर्थतंत्र की सफलता उसके लोगों के स्वाबलंबन व विवेकपूर्ण जीवनयापन में निहित हैं। अर्थशास्त्र में एक ओर नीतिमत्तापूर्ण उत्पादकीय व्यवहारों की जरूरत है तो दूसरी ओर विवेकपूर्ण मर्यादित जरूरतों को पोषित करते उपभोग व्यवहारों की। आर्थिक साधन जब सर्वोदय की भावना के साथ विनियोजित किए जाते हैं तो उनसे शांतिपूर्ण अहिंसक अर्थशास्त्र की रचना को आकार मिलता है। पूँजीवादी अर्थतंत्र आर्थिक समृद्धि के कितने ही मायाजाल क्यों न दिखाता हो किन्तु शांतिपूर्ण समाज रचना हेतु आज समग्र विश्व गांधीजी द्वारा निर्देशित उपायों की ओर बलवती आशा के साथ निहार रहा है। यदि आर्थिक व्यवहारों में नीतिमत्ता का, प्रेम का व करूणा का पुट नहीं होगा तो वह किसी भी हालत में समाजोपयोगी नहीं बन सकता, सामाजिक शांति की आधारशिला नहीं रख सकता। एक विकृत आपाधापी वाले अर्थतंत्रीय समाज में हर एक तवंगर अपने से निर्बल को अस्तित्व हीन बनाकर अपनी ताकतें बढ़ाने में लगा रहता है जिसमें सुख समृद्धि की कल्पना नहीं की जा सकती।

गांधीजी के अर्थ चिन्तन में निहित प्रमुख घटक.....

मानवजाति के शुभचिन्तकों ने अर्थशास्त्र के सिद्धान्त व व्यवहारों का सृजन संभवतः आर्थिक व्यवहारों को मितव्ययतापूर्ण बनाने अर्थात् व्ययों को कम करने, मानवीय बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि, तथा व्यावसायिक इकाइयों की नफाकारकता के प्रमाण में उत्तरोत्तर वृद्धि करने के उद्देश्य से किया होगा जिसमें व्यावसायिक नीतिमत्ता का पुट विद्यमान था। इस दिशा में मांग-पूर्ति के बजार विश्लेषण संबंधी सिद्धान्त अस्तित्व में आए ताकि मांग के अनुरूप उत्पादकीय प्रक्रिया का संचालन किया जा सके तथा उत्पादन के उपलब्ध साधनों का इष्टतम संयोजन प्राप्त कर कार्यक्षमता व कार्य कुशलता की सिद्धि की जा सके। इस दृष्टि से अर्थशास्त्र में उत्पादन के साधनों के समुचित प्रबंधन पर ध्यान देने की बात की गई।

गांधीजी के अर्थशास्त्र को समझने के लिए पश्चिम की उस आर्थिक विकास की विचारधारा से थोड़ा अलग हटकर सोचना पड़ेगा जो 18वीं शताब्दी का औद्योगिक व आर्थिक क्रांति का परिणाम है। कृपालानीजी के मतानुसार गांधीजी के आर्थिक विचारों में समग्रता का पुट विद्यमान था वे उसे नैतिक एवं आध्यात्मिक पक्ष के साथ जोड़कर देखते थे जिसका सीधा सरोकार मानव कल्याण से है। गांधीजी इसे समझने के लिए जिस भाषा का उपयोग करते थे वो आम आदमी की भाषा है, बजार की पेशेगत भाषा नहीं। वे वैयक्तिक,

सामाजिक हितों को साथ लेकर चलने के पक्षधर थे। गांधीजी अर्थशास्त्र को आर्थिक परिप्रेक्ष्य तक ही सीमित न रखकर मानव जीवन की समग्रता के साथ जोड़कर देखते हैं, परखते हैं। उनका मानना है कि यदि आर्थिक व्यवहारों में नैतिक व आध्यात्मिक सोच का समावेश हो तो व्यक्ति, समाज और समष्टि सभी के हितों का समान रूप से जतन हो सकता है। भारतीय संस्कृति साहित्य के महान ग्रंथ- "गीता" में इन तीनों घटकों के बीच समान्जस्याभाव व असंतुलन को तामसिक विचार की संज्ञा दी गई है। गीता में सुझाई गई कर्म संस्कृति, जो सत्य और अहिंसा पर केन्द्रित है, आर्थिक व्यवहारों का संपोषित तरीके से सिंचन व नियमन करती है, उसमें सामाजिक समरसता, शांति और समृद्धि को यथोचित प्रश्रय मिलता है, इस व्यवस्था में सभी वैयक्तिक घटक एक दूसरे के प्रतिस्पर्धी नहीं अपितु परस्पर पूरक और सहयोगी की भूमिका अदा करते हैं तथा "सब एक के लिए और एक सबके लिए" की भावना से ओतप्रोत होकर आजीवोपार्जन का धर्म निभाते हैं। यह सही है कि कोई भी व्यक्ति अपनी न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा किए बिना नहीं रह सकता इसलिए हरेक व्यक्ति के पास उनको पूरा करने के लिए आर्थिक पोषक क्षमता का होना जरूरी है किन्तु इसके लिए जीवन के समस्त व्यवहारों में व्यक्ति, समाज व राष्ट्र की उन्नति के लिए नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का उपस्थित का होना भी उतना ही अनिवार्य है। इसकी समझ भारतीय परिवेश में रची बसी है। हम जीवन के किसी भी निर्णय में इनको एक दूसरे से प्रथक नहीं रख सकते। हम कोई भी निर्णय लेते समय यदि यह विचार करें कि हमारे उस निर्णय का समाज के निर्बल वर्ग अथवा अंतिम छोर पर रहने वाले व्यक्ति के हितों पर क्या प्रभाव पड़ेगा, उसका कितना भला होगा जिसको हमने अपने जीवन में कभी देखा हो? तो निश्चित रूप से नीतिमत्तापूर्ण अर्थतंत्र की कल्पना को साकार किया जा सकता है। गांधीजी सर्वोदय के अर्थतंत्र की स्थापना हेतु निम्न लिखित घटकों की उपस्थिति को जरूरी मानते हैं-

1. काम अर्थात् कर्म संस्कृति व रचनात्मकता को प्राधान्य-

गांधीजी द्वारा निर्देशित अर्थतंत्र सभी के लिए काम की सुनिश्चितता का होना जरूरी मानता है। अर्थात अर्थतंत्र ऐसा होना चाहिए जो समाज के सभी हाथों को बिना किसी भेदभाव के काम की गारंटी देता हो। यहाँ काम का अर्थ उत्पादकीय रचनात्मकता अर्थात् वास्तविक उत्पादकता से है। काम को लेकर गांधीजी की स्पष्ट समझ थी कि आर्थिक उपार्जन व सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से बौद्धिक श्रम व शारीरिक श्रम में कोई भेद न हो ताकि समाज से अश्पृश्ता का कलंक धुल सके, सभी को काम के समान अवसर उपलब्ध हो सकें और सभी को दो जून की रोजी रोटी की सुनिश्चितता हो सके।उनका दृढ़ विश्वास था कि सभी को काम करने का,स्वायत्त रूप से अर्थोपार्जन करने और जीवन जीने का समान अधिकार है।

2. उत्पादन के साधनों का लोक-नियंत्रण में होना-

उत्पादन के साधनों पर लोगों का नियंत्रण आवश्यक है। इस तरफ ध्यान रखना जरूरी है कि कहीं वे अमार्यादित होकर समाज हितकंटक न बन जाएं। साधऩजनित आर्थिक व्यवस्थाएं गरीबी हटाने के स्थान पर गरीबों को ही न हटा बैठें। उत्पादन के साधनों का संचालन, रखरखाव व मरम्मत आदि लोगों के नियंत्रण में हों, स्थानीयता के हित में हो यह जरूरी है क्योंकि मानवता के दृष्टिकोण से उत्पादन के साधनों का सरोकार लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि से है। उत्पादन इतना अधिक न हो जाए कि उसके परिणाम लोक हित की बजाय मांग-पूर्ति के गणित में उलझकर रह जाएं जो जरूरतों की संतुष्टि और उसके प्रतिफल

में अनुचित व्यापारिक व्यवहारों का पोषण करने लगें। आचार्य विनोबा भावे लफंगा पैसे का अनर्थकारण में स्पष्ट करते हैं कि वस्तु की कीमतें उसकी उपयोगिता के आधार पर निर्धारित होनी चाहिए न कि अधिकतम (उचित-अनुचित का विचार रहित) नफा हेतु निर्मित क्रत्रिम मांग-पूर्ति की स्थिति पर। कृपालानीजी गांधीजी के आर्थिक विचारों की समीक्षा करते हुए कहते हैं कि यदि उत्पादन के साधन विकेन्द्रित होते हैं, उसके उपयोग पर आमजन का समान अधिकार रहता है, तो सभी को आसानी से सहज रूप से काम की सुनिश्चितता की जा सकेगी। उत्पादन के साधन सभी के लिए इस प्रकार उपलब्ध होने चाहिए जिस प्रकार हवा और पानी मुक्त रूप से सभी को प्रदान किए हैं।

3. मानवीय आवश्यकताओं का मर्यादित होना-

गांधीजी का मानना था समाज की जरूरतें संयमित व मर्यादित होनी चाहिए ताकि समाज के सभी लोग अपनी बुनियादी आवश्यकताओं की संतुष्टि बेहतर तरीके से कर सकें। यदि ऐसा होता है तो उत्पादन हेतु उपलब्ध समस्त संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग होगा, दूसरों के अधिकारों का हनन नहीं होगा तथा समाज में खुशी व समृद्धि का वातावरण निर्मित होगा। उनका स्पष्ट मत था कि सभी को वास्तविक जरूररतों को ही पूरा करने का अधिकार है लालच को संतोषने का नहीं। आगे वे जरूरतों व काम के मध्य संबंध स्थापित करते हुए कहते हैं कि हमें उतना ही उपयोग का अधिकार है जितना हम काम करते हैं या वास्तविक उत्पादन करते हैं, अतिरेक लेने पर हम निश्चित रूप से दूसरे के अधिकारों का अधिग्रहण करते हैं। जरूरतों के परिमाण में गुणाकार रूप से वृद्धि नहीं होनी चाहिए।

4. क्रत्रिम जरूरतें खड़ी करने की खिलाफत करना-

गांधीजी के आर्थिक विचार न्यायोचित आजीविका उपायों की वकालत करते हैं। हर एक उत्पादक समाज की जरूरतों को संतुष्ट करने के लिए है न कि जरूरतें खड़ी करने अथवा अपने आर्थिक फायदे \ लालचपुष्टि के लिए लोगों की बिन-जरूरी आवश्यकताओं को उकसाने के लिए। दुर्भाग्यवश आज मांग-पूर्ति के अर्थशास्त्र में उलझकर हर कोई लोगों की वैयक्तिक आवश्यकताओं को उकसाकर मांग खड़ी करने की उचित-अनुचित जुगत में लगा हुआ है इसीलिए समाज में सहयोग की जगह स्पर्धा है। नैतिक रीति से अर्थतंत्र का उदय उत्पादकीय प्रवृत्तियों के द्वारा लोगों की बुनियादी जरूरतें संतुष्ट करने के लिए हुआ है। एक असरकारक अर्थतंत्र वह है जिसमें कीमतों पर इस प्रकार अंकुश किया जाता है कि कमजोर तबके का व्यक्ति भी अपनी बुनियादी जरूरतें सहजता से पूरी कर सके। इसके विपरीत जब व्यावसायिक इकाइयां अपनी नफाकारकता को बढ़ाने के लिए अतिरेक उत्पादन करती हैं और येनकेन प्रकारेण उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में लग जाती हैं तब सम्पोषण की कड़ी टूटती है और होता है आर्थिक साधनों का केन्द्रीयकरण जो सामाजिक-आर्थिक दूषणों को जन्म देता है।

5. सामाजिक-आर्थिक शोषण से मुक्त अर्थतंत्र की पुरजोर वकालत-

केन्द्रीयकरण प्रेरित अर्थतंत्र में कई प्रकार के सामाजिक वर्ग खड़े हो जाते हैं जो निर्बल और मातहत वर्ग का सामाजिक-आर्थिक शोषण करने में गुरेज नहीं करते। गांधीजी ने मजदूरों को संगठित कर उन्हें सत्याग्रह के द्वारा मार्गदर्शन प्रदान करके शोषण से मुक्ति दिलाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। वे जमींदारों द्वारा किए जाने वाले किसानों के शोषण के खिलाफ थे जिसका विरोध भी उन्होंने सत्याग्रह के

माध्य से किया था। आर्थिक आधार पर या काम के स्वरूप के आधार पर सामाजिक भेदभाव किया जाय यह उन्हें स्वीकार नहीं था। इससे जनित अश्पृश्यता को वे मानवजाति का कलंक मानते थे। इसके निवारण हेतु ही उन्होंने शरीरश्रम व रचनात्मक कार्यक्रमों का अहिंसक हथियार बनाया जिससे सामाजिक क्रांति लायी जा सकती थी।

6. सामाजिक समसरसता एवं सामाजिक न्याय पर बल-

गांधीजी का दृढ़ विश्वास था कि आर्थिक समृद्धि तभी समाजोपयोगी सिद्ध हो सकती है जब उसका समाज के सभी वर्गों में न्यायोचित वितरण हो। जब हरेक को अपने जीवन निर्वाह हेतु योग्य उपादेय मिल जायेगा तो आपाधापी, छीनाझपटी नहीं होगी और समाज के सभी वर्गों के मध्य मधुर सामन्जस्य बना रहेगा। सभी हाथों को काम, सभी की पारस्परिक आवश्यकताओं की पूर्ति होगी तो स्थानीय अर्थतंत्र की जडें मजबूत होंगी तथा सामाजिक संबंध और अधिक सुदृढ़ बनेंगे। किन्तु मानवीय मूल्य व नीतिमत्ता की परवाह किए बिना आंकड़ाकीय प्रगति पर अनवरत बढ़ रहा वर्तमान अर्थतंत्र इस अंतिम सुखद अनुभूति से दूर होता जा रहा है। कहा भी है- **"वारिध बरसे तृण जले, बाढ़ खेत को खाय, राजा जब अन्याय करे तो न्याय कौन पे जाय।"** इसलिए समय रहते अपनी जड़ों को तलाशने की जरूरत है।

7. आर्थिक विकेन्द्रीकरण के दर्शन को अपनाने पर बल-

गांधीजी पूँजीवादी शोषित अर्थव्यवस्था का सदैव विरोध करते रहे। वे ऐसी आर्थिक व्यवस्था के पोषक व प्रयोगधर्मी थे जो भौतिक संसाधनों व आय तथा उत्पादन के साधनों के केन्द्रीयकरण को दूर रखता था। उनके अर्थतंत्र में सभी मानवीय इकाइयों को क्रियाशील बनाना शामिल था। इसमें न कोई शोषक था और न ही कोई शोषित।

8. कार्यकुशलता व कार्यक्षमता में सुधार के नाम पर होने वाले अविवेकपूर्ण मशीनीकरण का विरोध-

जब तकनीकी आधुनिकीकरण की जमात बैठती है तो गांधीजी के सम्पोषित आर्थिक विचारों को पुरातनवादी व पिछड़ा मानकर तबियत से आलोचना व निंदा की जाती है। जबकि वास्तविक परिदृश्य व परिणति ऐसी नहीं है। न तो वे मशीनीकरण के विरोधी थे और न ही उत्पादकता व संवृद्धि के। यदि ऐसा होता तो उन्होंने अधुनिक चरखे का आविष्कार न किया होता जिस पर तत्कालीन सरकार ने उन्हें एक लाख रूपये का इनाम दिया था। हाँ, उनकी मंशा स्पष्ट थी कि मशीनीकरण या तकनीकी एडवांसमेंट मानव की उत्पादन क्षमता में सुधार लाने के लिए हो, कार्यकुशलता में वृद्धि के लिए हो, उनकी उत्पादकीय समस्याओं के समाधान के लिए ही हो न कि मानव को हटाने के लिए। वे यंत्र नहीं अपितु यंत्रों की घोर लालसा के विरोधी थे जो उत्पादन के साधनों का केन्द्रीयकरण करती थी, समाज में शोषक-शोषित वर्गों की उत्पत्ति का सबब बनती थी। कृपालानीजी ने "**क्या गांधीजी मोडर्न थे**?" नामक अध्याय में इस तथ्य का बहुत ही सुन्दर चित्रण करते हुए स्पष्ट किया है कि समाज के सामूहिक हितों की चिंता के साथ यदि तकनीकी विकास के परिणामों को मापा जाना पिछड़ापन है तो गांधीजी निःसंदेह आधुनिक नहीं थे। इसी तरह विविध तर्क देकर वे गांधीजी के मानवीय अर्थशास्त्रीय विचारों की वैज्ञानिकता व आधुनिकता को वर्तमान जगत के समक्ष रखते हैं।

9. अर्थतंत्रीय विचार में स्वदेशी व स्वाबलंबन के दर्शन के माध्यम से खरे स्वराज की ओर बढ़ते कदम-

गांधी विचार का अर्थशास्त्र स्वदेशी का अर्थशास्त्र है जिसमें समाज का उत्पादन पारस्परिक जरूरतों की संतुष्टि करता है। एक सत्याग्रही व आश्रमवासी के लिए उन्होंने स्वदेशी व्रत का पालन अनिवार्य बताया। यह वैयक्तिक स्वाबलंबन व सामूहिक स्वराज की सीढ़ी है। यदि अर्थतंत्र इस विभावना को छोड़कर अन्यतत्र मार्ग का अनुसरण करता है तो अर्थतंत्र में वैयक्तिक व सामूहिक रूप से वांछित परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते और न ही स्वस्थ अर्थतंत्र का निर्माण किया जा सकता है।

10. समुदाय की गरीबी व बेकारी का निवारण करने वाले अर्थतंत्र का समर्थन-

गांधीजी के आर्थिक विचारों में समुदाय की गरीबी और बेरोजगारी की चिन्ता, चिन्तन व उपाय निहित हैं। उनकी आर्थिक विचारधारा के केन्द्र में समाज के अंतिम छोर पर रहने वाला जीव है। जिसे उत्पादन व्यवस्था से जोड़कर उसकी निहित क्षमताओं का उपयोग किया जा सकता है एवं रचनात्मकता की तरफ उसके विचारों की परिपक्वता के द्वारा उसकी कुशलताओं का उत्तरोत्तर विकास किया जा सकता है और अंततः उसकी खरीद क्षमता में वृद्धि कर उसके जीवन निर्वाह के स्तर को ऊपर उठाया जा सकता है।

11. न्यासिता (ट्रस्टीशिप) को पोषित करती अर्थव्यवस्था को प्रोत्साहन-

गांधीजी ने समाज में आर्थिक असमानता को कम करने के लिए अनूठा रास्ता सुझाया था जिसे न्यासिता अथवा ट्रस्टीशिप के रूप में जाना जाता है। इसमें बैर-विरोध की जगह प्रेम, समर्पण, करूणा व दया का भाव प्रतिष्ठित होता है। इस व्यवस्था में आर्थिक समानता लाने के लिए छीनने के स्थान पर हृदय परिवर्तन के मार्ग की वकालत की गई है। जिनके पास अपनी बुनियादी जरूरतों से अधिक या अतिरेक साधन संसाधन हैं वे स्वेच्छा से समाज के उन लोगों के लिए समर्पित करें जो संसाधन विहीन हैं, जरूरतमंद हैं। इससे निष्क्रिय पड़े उत्पादन के साधन सक्रिय उत्पादकता में परिवर्तित होकर सकल राष्ट्रीय उत्पादकता में अपना महत्तम प्रदान सुनिश्चित कर सकेंगे। आर्थिक असमानता को न्यूनतम करने वाली गांधीजी की अनूठी सामाजिक पहल सत्य, अहिंसा प्रेम व करूणा जैसे बुनियादी मानवीय मूल्यों से प्रेरित है।

12. एकाधिकार व अनुचित स्पर्धा के दूषण से मुक्त अर्थव्यवस्था के पक्षधर-

गांधीजी ऐसी अर्थव्यवस्था के पोषक थे जिसमें अनुचित स्पर्धा नहीं अपितु पारस्परिक पूरकता का गुण विद्यमान था। इसमें उत्पादक व उपभोक्ता दोनों मे से कोई भी किसी की भी मजबूरी का अनुचित लाभ न उठाते हुए समाजिक उत्थान में अपनी भूमिका सुनिश्चित करता हो। एकाधिकार एवं अनुचित प्रतिस्पर्धा के दूषणों से मुक्त व्यवस्था ही स्वस्थ व्यावसायिक व्यवहारों एवं संपोषित अर्थतंत्र की हिमायत कर सकती है।

उपसंहारः गांधीजी के आर्थिक विचारों की वर्तमान प्रसंगिकता

गांधीजी के आर्थिक विचार सर्वोदय की दृष्टि से तत्कालीन समय में भी प्रासंगिक थे और सही मायनों में सभी के जीवन और सुख-शांति के लिए आज भी उतने ही अनिवार्य प्रतीत होते हैं। आज भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व आर्थिक असमानता, गरीबी व बेकारी की समस्याओं से जूझ रहा है, हर कोई पेशेगत मार्ग की वकालत करते हुए अर्थोपार्जन की अंतहीन दौड़ में उचित-अनुचित का विचार किए बिना केंकड़ावृत्ति को अपनाने में तनिक भी संकोच नहीं कर रहा है और सपने संजोए है खुशी व समृद्ध समाज के। बेहतर

जीवन जीने के लिए विकसित किए गए इस अर्थशास्त्र में नीतिमत्ता का आधारभूत समुच्चय विद्‌यमान था जिसे आज मानवीय लालच व स्वार्थपरता की आंधी ने उखाड़ फैंका है। वर्तमान में आर्थिक प्रगति के बाबजूद समाज में खुशी नहीं हैं, सभी को समान रूप से काम के अवसरों की स्वतंत्रता नहीं है, आय के समान वितरण का तत्व व तंत्र व्यवहार में नहीं है जिसके चलते व्यक्ति व समाज के हित आपस में टकराने लगे हैं। कृपालानीजी ने तर्क, विवेक व हृदय की कसौटी पर महसूस किया कि राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी ने भारतीय अर्थतंत्र की उन समस्याओं पर न सिर्फ गहराई से विचार किया जिसका संबंध दरिद्र नारायण के हित संरक्षण से है अपितु वह अहिंसात्मक अर्थतंत्र का मार्ग भी अपने प्रयोगों के आधार पर प्रशस्त किया जिस पर चलकर सम्पोषित विकास के प्रतिमान स्थापित किए जा सकते हैं।

संदर्भ

I. कृपालानी जे.बी. (1955): “गांधीः हिज लाइफ एण्ड थोट”

II. गांधी मो. क. (1930)- मंगल प्रभात, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद

III. विनोबा (1965)- लफंगा पैसानुं अनर्थकारण, यज्ञ प्रकाशन वडोदरा

****

डॉ. लोकेश जैन

प्रोफेसर- ग्रामीण प्रबंध

ग्रामीण प्रबंध अध्ययन केन्द्र

गूजरात विद्‌यापीठ

Copyright © 2012 – 2018 KCG. All Rights Reserved. | Powered By: Knowledge Consortium of Gujarat